International Journal of Information Movement Vol.I Issue VI (October 2016)
Website: ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 58-67

मनोहर श्याम जोशी के उपन्यासों में उत्तर आधुनिक आर्थिक समाज

मान सिंह
शोधछात्र, पीएच.डी. (हिन्दी)
हिन्दी भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

अर्थ समाज को संचालित करने का सशक्त माध्यम है। सम्पूर्ण समाज व्यवस्था अर्थ से नियंत्रित होती है। अर्थ के महत्व के कारण ही चार पुरूषार्थो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में अर्थ को धर्म के बाद महत्ता प्रदान की गई है। अर्थ के महत्व को रेखांकित करते हुए कार्ल मार्क्स लिखते हैं– ''अर्थ जीवन का विधायक है। युग का राजनीति और सामाजिक घटनाक्रम तत्कालीन आर्थिक प्रतिक्रिया से प्रभावित रहता है और सामाजिक तथा राजनीतिक विकास, आर्थिक वर्गो के संघर्ष के आधार पर होते हैं।''[1]

प्राचीनकाल में मनुष्य की आवश्यकताएँ कम होने के कारण वस्तु विनिमय से पूरी हो जाती थी अर्थात् वस्तु के स्थान पर वस्तु का आदान–प्रदान किया जाता था इसलिए अर्थ से अधिक धर्म को महत्व दिया गया है परन्तु कालान्तर में आवश्यकताएँ बढ़ने लगी और इन आवश्यकताओं की पूर्ति वस्तु विनिमय की अपेक्षा धन से पूरी होने लगी। इस प्रकार धीरे–धीरे धन का महत्व बढ़ता गया। प्रत्येक समाज का सम्पूर्ण विकास उसके आर्थिक ढाँचे पर निर्भर करता है। जिस समाज में अर्थ का समान वितरण होगा वह विकसित होगा। औद्योगीकरण ने बाजारवाद को मजबूती प्रदान की तथा मनुष्य आवश्यकताओं के स्थान पर इच्छाओं की पूर्ति में लीन हो गया।

इस अर्थ प्रधान समाज में प्रत्येक वस्तु का मूल्य तय है। पूँजीवाद एवं बाजारवाद के कारण ''बीसवीं सदी के शुरूआती दशकों से मनुष्य को आर्थिक मनुष्य माने जाने लगा था। भूमण्डलीकरण के संदर्भ में एक तथ्य यह है कि इसने आक्रामक ढंग से आर्थिक सिद्धांत को केन्द्रीयता दी। इसने ''प्रत्येक को उसकी जरूरत के अनुसार' 'सभी को उसकी खरीदने की सामर्थ्य के अनुसार' बदल कर रख दिया। मानव जीवन कुछ पहले से ही आर्थिक कसौटी के आसपास सिकुड़ता जा रहा था, परम्परागत मानवीय गुण मूल्यहीन होने लगे थे। अर्थतंत्र और संस्कृति के सम्बन्ध को लेकर यह यांत्रिक दृष्टि प्रचारित की जा रही थी कि आर्थिक आधार बदल दो, सब कुछ बदल जाएगा।''[2] मनोहर श्याम जोशी अपने उपन्यासों में उत्तर आधुनिक समाज के आर्थिक परिदृश्य को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं।

1.0 वर्गीय विषमता का चित्रण :

समाज में अर्थ के आधार पर तीन वर्ग हैं– निम्न वर्ग, मध्यम वर्ग, उच्च वर्ग। इन वर्गों के भी उपवर्ग हैं परन्तु आर्थिक आधार पर उच्च वर्ग एवं निम्न वर्ग के रूप में समाज का विभाजन किया गया है। आर्थिक रूप से समृद्ध वर्ग, उच्च वर्ग समाज को व्यापक रूप से प्रभावित करता है। इस वर्ग में पूँजीपति, साहूकार, जमींदार, अधिकारी, राजनेता तथा बड़े व्यापारी आदि आते हैं। सामाजिक विकास में भी इनका योगदान रहता है। निम्न वर्ग, आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ वह वर्ग है जो दो जून की रोटी के लिए दिन–रात परिश्रम करता है। उच्च वर्ग एक 'आइसक्रीम' खाने में जितना पैसा खर्च करता है उतने में एक गरीब का चूल्हा जलता है। इस प्रकार धन का यह असमान्य वितरण वर्गीय विषमता को उत्पन्न करता है। ''आदिम समुदायों में कोई भी वर्ग नहीं होता था और मनुष्य प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयोग करते थे। जीवित रहने के लिए आवश्यक वस्तुओं का वितरण बहुत–कुछ समान था क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी–अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति प्रकृति द्वारा प्रदत्त वस्तुओं से कर लेता था। दूसरे शब्दों में, प्रकृति द्वारा जीवित रहने के साधनों का वितरण समान होने के कारण वर्ग का जन्म उस समय नहीं हुआ था। शीघ्र ही वितरण में भेद या अंतर आने लगा और उसी के साथ–साथ समाज वर्गो में विभाजित हो गया। मार्क्स के अनुसार समाज स्वयं अपने को वर्गों में विभाजित कर लेता है– यह विभाजन

धनी और निर्धन, शोषक और शोषित तथा शासक और शासित वर्गो में होता है।''[3] सम्पूर्ण विश्व में यह वर्गीय विषमता पायी जाती है। भारत जैसे विकासशील देश में भूमण्डलीकरण और बाजारवाद के प्रभाव स्वरूप पिछले लगभग दो दशकों से यह विषमता तेजी से बढ़ी है। अमीर लोग और अधिक समृद्ध बनने लगे तथा गरीब लोग अमीर बनने के लिए प्रयास करने लगे। कार्ल मार्क्स इसे 'वर्ग संघर्ष' के रूप में व्याख्यायित करते हैं ''कम्युनिस्ट घोषणा पत्र में मार्क्स और एंगेल्स ने लिखा है, अभी तक के सभी समाजों का इतिहास वर्ग–संघर्ष का ही इतिहास है। स्वतंत्र व्यक्ति तथा दास कुलीन वर्ग तथा साधारण जनता, सामन्त तथा अर्द्ध–दास किसान, गिल्ड का स्वामी तथा उसमें कार्य करने वाले कारीगर, संक्षेप में, शोषक तथा शोषित, सदा एक–दूसरे के विरोधी होकर कभी प्रत्यक्ष तो कभी अप्रत्यक्ष परन्तु अनवरत युद्ध करते रहते हैं। इस संघर्ष का अंत प्रत्येक बार या तो समग्र समाज के क्रान्तिकारी पुनर्निर्माण में या संघर्षरत वर्गो की आम बर्बादी में होता है। ....आधुनिक पूँजीवादी समाज, जोकि सामन्तवादी समाज के अवशेषों से अंकुरित हुआ है, वर्ग संघर्ष से विमुक्त नहीं है। इसने केवल पुराने के स्थान में नवीन वर्गो को, उत्पीड़न की नई अवस्थाओं को तथा नवीन प्रकार के संघर्षो को जन्म दिया है। फिर भी हमारे इस युग की पूँजीवादी युग की, एक विशिष्ट विशेषता यह है कि इसने वर्ग–संघर्ष को अधिक सरल बना दिया है। समग्र रूप में समाज उत्तरोत्तर दो महान् विरोधी समूहों में बँट रहा है, ये दो महान वर्ग, पूँजीपति और सर्वहारा, एक दूसरे से प्रत्यक्ष रूप में संघर्षरत हैं।''[4]

पूँजीवाद, उपभोक्तावाद, भूण्डलीकरण एवं महँगाई आदि घटक वर्गीय विषमता के लिए जिम्मेदार हैं। मनोहर श्याम जोशी इस संदर्भ में लिखते हैं– ''महंगाई बढ़ने से गरीबों का जीवन–स्तर उल्टा नीचे की ओर जा रहा है। नीचे वालों का जीवन–स्तर घट रहा है, बीच वालों का जीवन–स्तर ऊपर उठना बन्द हो गया है और ऊपर वालों का जीवन स्तर इतनी तेजी से ऊँचा उठ रहा है कि कुछ समझ में नहीं आता। ...आज पूँजीवाद ने अमीरी और गरीबी के बीच इतना जबरदस्त फासला पैदा कर दिया है, जितना कि विभिन्न इन्सानों की योग्यताओं में हो ही नहीं सकता। जैसे यही ले लीजिए कि कोई भी इंसान अन्य इंसानों से हजारों–हजारों गुना अक्लमन्द नहीं होता है लेकिन पूँजीवाद में आज अमीर की आय गरीब की आय से हजारों–हजारों गुना अधिक होना एक आम सी बात है। इससे दुनिया के सभी देशों में बड़ी तेजी से असन्तोष पनप रहा है।''[5] इस प्रकार वर्गीय विषमता के संकट को वह अपने उपन्यासों के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। उनके अनुसार अमीर और गरीब वर्गो की आर्थिक असमानता बीसवीं सदी के अन्त में तेजी से बढ़ती है ''गरीब और अमीर व्यक्तियों और देशों में जितना अन्तर बीसवीं सदी के अन्त में है उतना इतिहास में पहले कभी नहीं था। पहले हर समाज में लोगों के खान–पान, पहनावे और रहन–सहन में बहुत ज्यादा अन्तर इसलिए नहीं होता था कि अति उपभोग और विलासिता गलत समझी जाती थी। आज भी दक्षिण भारत के कुछ हिस्सों में अमीर–गरीब की पहचान मुश्किल है, क्योंकि सभी लोग लुंगी पहने, केले के पत्ते पर भात परोस कर खाते हैं। अब उपभोग–पूजक समाज में अमीर और गरीब न केवल साफ अलग नजर आते हैं बल्कि कल की 'अय्याशी' आज की 'आवश्यकता' में बदलती रहती है और इसके चलते कल के अमीर आज के मामूली हैसियत वाले बन जाते हैं।''[6] मनुष्य की सुविधाभोगी प्रवृत्ति इस असमानता की प्रमुख कड़ी है। दोनों वर्ग ही अपनी सामर्थ्य के अनुसार सुविधा का लाभ उठाते हैं। कारों की बढ़ती बिक्री ने अमीर लोगों का बस में जाना कम किया, उन्हें शॉपिंग के लिए मल्टीप्लेक्स मॉल उपलब्ध हुए। उनके यहां खान–पान सम्बन्धी वस्तुएँ एवं परिधान ब्रांडेड लेबल के ही आते हैं। इन सुख–सुविधाओं से निम्न वर्ग अछूता रहता है। इसी वर्गीय विषमता को मनोहर श्याम जोशी उपन्यासों के माध्यम से उकेरते हैं।

'हमजाद' उपन्यास में वर्गीय विषमता का चित्रण करता हुआ उदाहरण दृष्टव्य है' ''अगले दिन मैंने उसकी लाई हुई खिचड़ी खाने से इंकार किया जबकि स्नेहबई को चोरी की बात मालूम हो जाने के बावुजूद उसे खा लेने में कोई उज़्र नहीं हो रहा था। वह तो मुझे डाँटने लगीं कि अपने घर से चीज़ें लाया है, इन्हें चुराई हुई कैसे कहता है तू? और टोपन ने मुझसे कहा, जब मेरे घर में जरूरत से ज्यादः खाने की

चीज़ें हैं और तुम लोग भूखे हो तो मेरा तुम्हें खिलाने के वास्ते घर से चीज़ें ले आना पाप का काम कैसे हो सकता है? ...मैं अपनी भूख और उसकी दलील के आगे झुक गया और खिचड़ी पर टूट पड़ा।''[7]

क्याप उपन्यास में वर्गीय विषमता को समाप्त करने के लिए क्रान्ति की आवाज उठाई गयी है। उपन्यास का पात्र खीमराम मार्क्स के सिद्धान्तों के आधार पर इस विषमता को समाप्त करना चाहता है– ''इस पर उन्होंने मुझे पुचकार कर शांत किया और कहा, 'अभी तो तू मार्क्स की दो बातें ही गाँठ बाँध ले च्यला– पहली यह कि हम–जैसे ग़रीबों के पास खोने के लिए तो पाँव में पड़ी बेड़ियाँ ही हैं और पाने के लिए सारी दुनिया है। दूसरी बात यह कि जो जितना दे सके उससे उतना लिया जाये और जिसकी ज़ितनी ज़रूरत हो उतना उसे दिया जाये।' दोनों बातें च्यला यानी चेला यानी बेटा को बहुत अच्छी लगीं हालाँकि वह पूरी तरह समझ नहीं पाया उनका अर्थ। मैंने पूछा– 'मतलब यह हुआ कि दुनिया हम गरीबों को मिल जायेगी, है न कका'? उन्होंने मेरे गाल थपथपा दिये– 'हाँ, कोई गरीब–अमीर नहीं रह जायेगा, क्रान्ति हो जायेगी'।''[8]

इस उपन्यास में वर्गीय विषमता इस रूप में भी वर्णित की गई है कि एक ओर समृद्धि के पालने में झूलती उत्तरा है तो दूसरी ओर अभावों के थपेड़ों से जूझता कथानायक। इसी आर्थिक असमानता के कारण दोनों प्रेम की सफल परिणति तक नहीं पहुँच पाते। इस प्रकार की स्थिति 'कसप' में भी दिखलायी देती है जहाँ डी.डी. और बेवी की आर्थिक विषमता उनके बीच दूरियाँ तय करती है। इस संदर्भ को स्पष्ट करता उदाहरण दृष्टव्य है– ''बब्बन, जो अब तक लेटा हुआ था, उठकर बैठ जाता है और कहता है, 'अरे हँसे नहीं तो क्या करें। डी.डी.टी. बम्बई में इमली के पत्ते पर डण्ड पेलने का धन्धा करता है। भाई जान का अभी अपना तो रहने–खाने का ठिकाना है नहीं, वहाँ, और खाब देख रहे हैं शास्त्रीजी की इकलौती बेटी को ब्याहकर गिरस्ती बसाने के। जिस बेबी के चार–चार भाई हैं और चारो बड़े ओहदों पर हैं उसे इससे कौन ब्याहेगा? पहाड़ से नीचे धक्का जो नहीं दे देंगे।''[9]

उपन्यास के पात्र के माध्यम से जोशी जी वर्गीय विषमता के प्रश्न उठाते हैं तथा आर्थिक समानता की वकालत करते हैं– ''गन्दी बस्तियों की झाँकी के बाद उसने नगरीकरण का समाजशास्त्र समझाया। इस संदर्भ में उसने गाँधी की कम और मार्क्स–लेनिन की अधिक चर्चा की। 'मेधावी स्त्री के लिए समाजवाद निर्देशिका' नुमा पूरा पाठ उसने लिखा। पूँजीवाद के अमानवीय पक्षों का विशद् विवेचन किया और ऐसा करते हुए कर्नल साहब और उनकी पत्नी –जैसे पूँजीपति बराबर उनकी आँखों में रहे। उसने स्वीकार किया कि वह सम्पन्नता और भौतिक प्रगति को नितांत आवश्यक मानता है। इतना ही कि वह उसका समान वितरण चाहता है। जब सब सम्पन्नता को प्राप्त होंगे, जब मनुष्य, मनुष्य का शोषण करना छोड़ देगा, तब हम अपनी प्रतिभा का आन्तरिक शक्तियों का पूरा उपयोग करके इस धरती पर ही स्वर्ग बसा सकेंगे, ऐसा उसे विश्वास है।''[10]

इस प्रकार आर्थिक असमानता को समाप्त कर समानता की बात वह उपन्यासों में उठाते हैं। आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्ति समानता की लड़ाई जीतना चाहता है और उच्च आर्थिक स्थिति प्राप्त करना ही अपना उद्देश्य बना लेता है इस कारण अमीर और अधिक अमीर तथा गरीब और गरीब होता चला जाता है। उपन्यास का नायक निम्न आर्थिक स्थिति में पला–बड़ा है। लेकिन वह अपनी युवावस्था समृद्धि में बितना चाहता है– ''अभी वह लाखों वाला हुआ नहीं है। वह गुलनार का वैभव ओढ़कर आया है। किन्तु डी. डी. चाहता है कि अबकि वह सचमुच 'लाखोंवाला' बन जाये। किसी के योग्य बनते–बनते इस योग्य बन जाये कि गुलनार की तरह उसे भी भारतीय रूपया बहुत सस्ता मालूम होने लगे। जिस भारतीय अमीरी ने उसे हिकारत से देखा है, उस भारतीय अमीरी को वह हिकारत से देख सके।''[11] वर्गीय विषमता मात्र आर्थिक आधार पर नहीं अपितु स्वभावगत एवं चारित्रित स्तर पर भी मुखरित हुई है। इस संदर्भ में 'कसप' उपन्यास उदाहरण प्रस्तुत करता है' ''पति का चीखना–चिल्लाना, मार–पीट करना अभिजात्य के अभाव का प्रमाण ठहराती आयी है वह– नहीं कार्तिक, ये मिलिट्रीवालों के नहीं, मिडिल क्लासवालों के काम हैं।''[12]

2.0 गरीबी एवं बेरोजगारी :

गरीबी और बेरोजगारी विकासशील समाज का कोड़ है। ये दोनों समस्याएँ आज हमारे सामने विकट रूप में उपस्थित हैं। बढ़ती जनसंख्या, बेरोजगारी एवं वेतन में असमानता गरीबी की समस्या को बढ़ाती है। विश्व बैंक 'गरीबी' के संदर्भ में कहता है– "The inability to attain a minimum standard of living" इस अर्थ में वह व्यक्ति गरीब है जो अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ है। समय–समय पर सरकार की निर्धारित नीतियाँ गरीबी के स्तर को तय करती हैं। साथ ही 'गरीबी हटाओ, देश बचाओ' जैसे नारे भी बुलंद किए जाते हैं। आजादी के बाद इस प्रकार के नारों की बाढ़ सी दिखायी देती है। लेकिन गरीबी को दूर करने के सार्थक प्रयासों के अभाव में आज 29.8 प्रतिशत''[13] लोग गरीबी रेखा से नीचे जी रहे हैं।

मनोहर श्याम जोशी 'अर्थव्यवस्था और अनर्थ नीति' लेख में गरीबी में औसत वृद्धि के कारणों पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं– ''उत्पादन के प्रति उदासीनता और उपभोग की उत्कण्ठा ने मिलकर वह वातावरण तैयार किया जो गरीबी दूर करने के राष्ट्रीय अभियान के लिए घातक सिद्ध हुआ। अर्थव्यवस्था का हर पहलू राष्ट्रहित की दृष्टि से नहीं, राजनीतिक हित की दृष्टि से देखा गया और राजनीति का तमाम तरह के नारों के बावजूद किसी भी, कैसे भी सिद्धांत से कोई सरोकार नहीं रहा। अर्थव्यवस्था राजनीतिक दबाव डालने और राजनीतिक प्रभाव पा जाने को समर्पित हुई। यही वजह है कि स्वाधीनता के तेईस वर्षों में तमाम योजनाकार्यो के बावजूद भारत अन्तरराष्ट्रीय बिरादरी में गरीब देश बना रहा है और भारत के पिछड़े इलाकों और तबको की स्थिति में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हो सका है।''[14]

भारत की गरीबी वोट बैंक के आकर्षण का केन्द्र रही है। चुनावी माहौल में प्रत्येक राजनेता अपने ढंग से इसे भुनाता है। गरीबों की दारूण स्थिति तथा भूख से बिलखता बचपन आदि स्थितियों को पर्दे पर उतारने वाली फिल्म स्लमडॉग मिलियनेयर आस्कर पा जाती हैं। ''स्लमडॉग करोड़पति के जरिए हमारी गरीबी को बेचा जा रहा है। जिसे बेचा जा रहा है पैसा उसके पास नहीं आ रहा है। गरीबी का मालिक भी कोई और है। पैसा उसी की जेब में जाता है। गरीब अपनी जगह बरकरार रहता है, उसकी गरीबी बिकती रहती है। गरीबी गरीब से स्वतन्त्र होती है। गरीब को नहीं मालूम पड़ता कि उसकी गरीबी बेची जा चुकी है। गरीबी और गरीबी की यह डाइलेक्टिस बड़ी जटिल है।''[15]

मनोहर श्याम जोशी के उपन्यासों के पात्र उत्तर आधुनिक समाज में आर्थिक अभावों से मुठभेड़ करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। 'क्याप' उपन्यास में लेखक 'गरीबी' के विषय में पात्र के माध्यम से अपने विचारों को व्यक्त करते हैं– ''ग़रीबी सचमुच एक अच्छा मज़ाक है– अमीरों का, अमीरों के लिए, गरीबों पर!''[16] आर्थिक तंगी के कारण साधनों के अभाव में प्रतिवर्ष लोग ठण्ड से मरते हैं, गर्मी से झुलसते हैं इसी स्थिति को वह 'क्याप' में उठाते हैं जहाँ रजाई के अभाव में किताबों से उसकी कमी को पूरा किया जाता है। इस संदर्भ को स्पष्ट करता उदाहरण दृष्टव्य है– ''उन्होंने कका की अनबिकी पत्रिकाओं को फर्श पर बिछाकर मेरे और मेरी भुलि यानी छोटी बहन के लिए बिछोना बना दिया। कका की किताबों से उसने सिरहाना बनाया ओर बाकी अनबिकी पत्रिकाओं के लिए उन्होंने पुराने ऊनी चिथड़ों से एक खोल–सा बना कर हमारे लिए रजाई सिल दी। यहाँ यह बता दूँ कि बिछौना, सिरहाना, रजाई तीनों ही हम फस्कियाधार वालों के लिए शब्द और वस्तु दोनों के ही रूप में लगभग अपरिचित थे और ग़रीबों के लिए आज भी हैं। लोग–बाग बर्फानी रातों में ठण्डे फ़र्श पर सो सकने की तैयारी में पहले कपड़े उतार कर लोट लगा–लगा कर ख़ूब ठिठुर लेते थे और फिर कपड़े पहनकर ठिठुरन के बाद थोड़ी गर्मी का सुख लेते हुए आराम से सो जाते थे। ओढ़ने के लिए एक पूरे परिवार के पास अक्सर कोई एक ही गरम चीज़ हुआ करती थी।''[17]

'हमजाद' उपन्यास में इस स्थिति को अभिव्यक्त किया गया है। उपन्यास का पात्र तिलक जीवनभर आर्थिक अभावों से जूझता रहता है। वह इन अभावों से मुक्त होने के लिए ब्लैकमेलिंग करने तथा स्वयं का यौन शोषण कराने को विवश है। इस विवशता को उद्घाटित करते हुए वह कहता है– ''यहाँ आपके मन में यह सवाल उठ सकता है, मेरे मन में तो रात दिन उठता ही रहा है बचपन से लेकर आज तक कि जब मैं एक शरीफ इन्सान था और टोपन हैवान। तब मैंने उसके नीचे आ जाना और ताजिन्दगी

उसके नीचे दबे रहना मंजूर कैसे कर लिया? जब मैं नादान था तब इसका जवाब अपनी ग़रीबी में खोजने की कोशिश करता था। अपनी भीतरी कमज़ोरी में भी, जिसे मैं अपनी ग़रीबी की ही उपज समझता था। तब मैं यह मानना चाहता था कि मैं टोपन से इसलिए दबता हूँ कि मैं और मेरा गरीब खानदान उसके एहसानों के बोझ से बदे हुए हैं, लिहाज़ा, उसकी मुख़ाल्फ़त कर नहीं सकते।''[18]

मनोहर श्याम जोशी समाज में तेजी से फैलती बेरोजगारी की समस्या को उपन्यासों के माध्यम से उजागर करते हैं– ''वे लोग तो डीडी को जेल भिजवाने के चक्कर में थे। बब्बन ने कहा लेखक–वेखक है, यह सब तो उनकी समझ में आता नहीं था। यही जानते थे कि बेरोजगार है बेरोजगार आदमी चोरी की कोशिश कर ही सकता है।''[19] बेरोजगारी की समस्या के कारण ही डीडी अपने प्रेम की वैवाहिक परिणति करने में सफल नहीं हो पाता है– ''सही है कि डीडी ने दया का विवाह ठहराने में हमारी मदद की है लेकिन यह कोई ऐसा अहसान नहीं कि हम बदले में अपने घर की सुन्दर, सुकुमार कन्या को एक सड़े–गले खानदान के बेरोजगार लड़के की झोली में डाल दें।''[20]

3.0 धनाभाव के कारण यौन शोषण :

यौन शोषण कई कारणों से किया जा सकता है जिसमें अर्थ भी एक महत्वपूर्ण कारण है जो कि यौन शोषण के लिए जिम्मेदार है। मनोहर श्याम जोशी 'हमजाद' उपन्यास में इस समस्या को बहुत शिद्दत से उठाते हैं जहाँ अर्थ के अभाव में पुरूष और स्त्री दोनों का शोषण किया जाता है। उपन्यास के पात्रों के माध्यम से धनाभाव के कारण होते यौन शोषण को उजागर किया गया है। इस संदर्भ को उद्घाटित करता उदाहरण दृष्टव्य है– ''...जब भी मैं या रीटा उससे पैसे माँगते तब वह मेरे सामने ही रीटा को बिस्तर में खींच लेता। हर पहली तारीख को जब वह रीटा को माहवारी भत्ता नगद देने आता तब भी 'माहवारी प्यास बुझाई' की माँग करता। अगर कभी मैं उससे इकट्ठा बहुत बड़ी रकम मांगता– बच्चों के बड़े होकर पहले देश में फिर परदेश में बोर्डिंग में रहकर पढ़ने के लिए चले जाने के बाद इसकी जरूरत अक्सर महसूस होने लगी– तो टी.के. रीटा के साथ–साथ खुद मुझे भी बिस्तर में खींच लेता।''[21] उपन्यास का पात्र तिलक आर्थिक अभावों से निजात पाने के लिए टी.के. की सहायता लेता है जिसके बदले में टी.के. ताउम्र तिलक का यौन शोषण करता रहता है। इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए तिलक कहता है ''तो क्यों न हम दोनों अदला–बदली की बिना पर उन्हें आज़माकर देखें? उसने पहले अपनी बारी रखी और फिर मेरी बारी कभी आने ही न दी। इस तरह चौकीदारी करते–करते उसने मुझ पर डाका डाला और मुझे बाकाइदः बताकर डाला। यहाँ आपके मन में यह सवाल उठ सकता है, मेरे मन में तो रात दिन उठता ही रहा है बचपन से लेकर आज तक कि जब मैं एक शरीफ़ इंसान था और टोपन हैवान। तब मैंने उसके नीचे आ जाना और ताज़िन्दगी उसके नीचे दबे रहना मंजूर कैसे कर लिया? ...तब मैं यह मानना चाहता था कि मैं टोपन से इसलिए दबता हूँ कि मैं और मेरा गरीब खानदान उसके एहसानों के बोझ से दबे हुए हैं, लिहाज़ा उसकी मुख़ाल्फ़त कर नहीं सकते।''[22]

4.0 सम्पन्नता और अभाव की स्थितियों का सम्बन्धों पर प्रभाव :

मनोहर श्याम जोशी के उपन्यासों में पात्र आर्थिक झंझावतों से जूझते रहते हैं। इन आर्थिक अभावों में ही वह अपने जीवन का उद्देश्य पूरा करते हैं। इस प्रकार वह अभावों से सम्पन्नता का मार्ग प्रशस्त करते हैं डी.डी. (कसप), तिलक (हमजाद), टी.के. (हमजाद), मिस्टर जोशी (ट–टा प्रोफेसर) कथानायक (क्याप), विभावती (कौन हूँ मैं) आदि उपन्यासों के पात्र इसी प्रकार के पात्र हैं। इन पात्रों कें माध्यम से अभाव तथा फिर सम्पन्नता में सम्बन्धों में आए बदलावों की पड़ताल की गई है। आर्थिक समृद्धि एवं अभाव ही समाज, परिवार एवं नातेदारी में सम्बन्धों की घनिष्ठता एवं दूरी का पैमाना तय करते हैं। ''व्यक्ति का पैसा ही दूसरों पर उसकी सत्ता तय करता है। मार्क्स की उक्ति यहीं आती हैं कि 'हर आदमी अपनी सामाजिक सत्ता और समाज से अपने सम्बन्ध अपनी जेब में रखकर चलता है।''[23] 'कसप' उपन्यास में इसी प्रकार की स्थिति को दर्शाया गया है। इस संदर्भ को अभिव्यक्त करता उदाहरण प्रस्तुत है– ''वह अपने अपेक्षाकृत निकट किन्तु निर्धन मौसिया ससुर के यहाँ विवाह में नहीं गयी थीं क्योंकि उन्हें अपने दूर

के रिश्ते फूका (जज साहेब) की बेटी के ब्याह में जाना था।''[24] 'कसप' का पात्र डी.डी. दूसरे के रहमो–करम पर पला बढ़ा है ऐसी स्थिति में वह शास्त्रीजी की बेटी से विवाह नहीं कर पाता, क्योंकि ऐसा करना उनसे सम्बन्ध विच्छेद करना होगा। बब्बन उसे समझाता हुआ कहता है– ''तू जानता है कि बेबी का परिवार ऊँची हैसियतवाला है। तू जानता है कि हम उन लोगों को नाराज नहीं कर सकते। उनके हम पर कितने ही अहसान है। इस समय भी वह मेरे लिए लखनऊ में नौकरी की कोशिश कर रहे हैं। मैं जानता हूँ। फिर तू ऐसा काम क्यों करना चाहता है जिससे उनके–हमारे सम्बन्ध बिगड़ जायें?''[25]

फिल्म निर्देशक बनने पर डी.डी. के दूर के रिश्तेदार तक उसे अपना सगा–सम्बन्धी बना लेते हैं। इस प्रकार अभाव में उसका साथ छोड़ने वाले लोग सम्पन्नता में उसके हमसफर बनने में देरी नहीं करते हैं– ''मुझे पता चला है कि डी.डी. कभी–कभी बब्बन के नाम डालरों में छोटी मगर रूपयों में मोटी लगने वाली धन–राशि भिजवा देता है कि अमुक को किसी भी तरह भिजवा देना। अमुक सदा कोई निर्धन परिचित या रिश्तेदार होता है। सबसे पहले उसने साबुली कैंजा नामक उस बाल–विधवा के लिए तीन सौ रूपये भिजवाये थे जो गणानाथ में बेबी की रखवाली के लिए आयी थी। बताया जाता है कि इस दानवृत्ति का पता चलने के बाद लोगों ने बब्बन से डी.डी. को अपनी तंगी– परेशानी का हाल लिखवाना शुरू किया, लोगों ने अपने यहाँ के विवाह–व्रतवन्त आदि की अग्रिम सूचनाएँ डी.डी. को भिजवाना शुरू किया।''[26]

कुरु कुरु स्वाहा...' उपन्यास अभावों एवं गरीबी की त्रासदी को वर्णित करते हुए सम्बन्धों पर इसके प्रभाव को रेखांकित करता है। इस सम्बन्ध में उदाहरण दृष्टव्य है– ''उसने फिर अँगुलियाँ जलाते हुए भगोना उठाया और सारी–की–सारी तहरी तामचीनी की एक गन्दी प्लेट में उलट दी। अब प्लेट अपने और मेरे बीच रखकर वह उसे खाने लगा। मैंने हाथ नहीं बढ़ाया तो वह बोला, 'दारू के नशे के बावजूद आपका हिन्दू जागा हुआ है भूतनी का'? 'नहीं नहीं'। जोशी जी ने अपनी प्रगतिशीलता का परिचय देते हुए एक ग्रास मुँह में डाला। उनसे यह कहते नहीं बना कि इतनी गन्दी तहरी, इतनी गन्दी प्लेट में मैं खा नहीं सकता।'' सम्पन्नता में हजारो कमियों को छिपाने की ताकत रहती है जबकि गरीबी हमेशा संदेह की दृष्टि से देखी जाती है। 'कौन हूँ मैं' उपन्यास में सम्पन्नता की स्थिति का सम्बन्धों पर पड़ने वाले प्रभावों को रेखांकित किया है। इस सम्बन्ध में उपन्यास की पात्र कहती है– ''और फिर तू यह क्यों भूल रही है कि हमारे समाज में अंततः किसी भी स्त्री को उतना ही अधिक भाव मिलता है जितना उसका पति ऐश्वर्यवान होता है।''[28] इस प्रकार धन के आधार पर विभाजित समाज वर्गीय विषमता को रेखांकित करता है। अत्यधिक धन की लालसा ने व्यक्ति के सामाजिक सरोकार को प्रभावित किया।

5.0 बाजारवाद एवं पूँजीवाद :

उत्तर आधुनिकता अंतवादों की घोषणा, वर्चस्व का नकार, अतियथार्थवाद, बहुलतावाद, क्षेत्रीयता का प्रसार, बाजारवाद एवं पूँजीवाद को साथ लेकर चलती है। इस रूप में बाजारवाद एवं पूँजीवाद इसके प्रमुख घटक हैं ''उत्तर– आधुनिकता का दर्शन–सूत्र है– 'संसार एक शॉपिंग कॉम्प्लैक्स है। इस 'शॉपिंग कॉम्प्लैक्स' के लिए क्षमता पैदा करो, इसे भोगो। मूल बात यह कि बहुराष्ट्रीय निगमों का पूँजीवाद ही ताकत (नव–साम्राज्यवाद) है। इस बहुराष्ट्रीय निगमों के पूँजीवाद ने सभी सीमाओं को तोड़कर 'विश्व बाजारवाद' या 'विश्व पूँजीवाद' को जन्म दिया है। तकनीकी क्रान्ति का जादू ही बहुराष्ट्रीय निगमों का 'विकास' मॉडल है। यह मॉडल विकसित देशों ने बनाया है और अविकसित देशों को अपने 'अम्ब्रेला' में लाने का षडयंत्र रचा है ताकि अविकसित देश कच्चा माल उगाने वाले और उत्पादित माल को खरीदने वाले 'उपनिवेश' बने रहें। विकसित देशों की पूरी राजनीति इधर ही सक्रिय है। यह औपनिवेशिक गुलामी का दूसरा चरण है।''[29]

'बाजार' शब्द प्राचीनकाल से प्रचलन में है तभी से यह जन–जीवन में अपनी भूमिका निभाता रहा है। प्रारम्भ में बाजार से आशय उस स्थान से होता था जहां क्रय–विक्रय किया जाता था। अर्थशास्त्रियों ने बाजार को परिभाषित किया है। बाजार का सम्बन्ध लेनदेन से होता है। आज के संदर्भ में बाजार शब्द की विस्तृत व्याख्या अपेक्षित है। बाजार मात्र क्रय–विक्रय की परिधि से निकलकर व्यापक हो चुका है। भूमण्डलीकरण के युग में विश्व की कल्पना एक गाँव से की जा रही है। वहां बाजार नियन्ता की भूमिका में खड़ा दिखाई देता। कृष्णदत्त पालीवाल बाजारवाद की बढ़ती पदचापों के संदर्भ को इस रूप में

समझते हैं– ''सोवियत यूनियन के सन् 1991 में पतन के बाद भूमण्डलीकरण की राजनीति और अर्थ–तंत्र नीति ने अपनी स्थिति को न केवल मजबूत किया बल्कि हर तरफ उसका हल्ला सुनाई देने लगा। साम्यवाद के विनाश का प्रभाव बहुत दूर तक पड़ा। उसके बाद यूरोप तथा एशिया के बहुत से देशों ने अपनी व्यापार–नीति में मुक्त बाजारवाद को खुले दिल से हवा दी। चतुरता के साथ 'मुक्त' बाजारवाद की स्थिति में सुधारवाद का नारा भी लगाया गया। इस सुधारवाद के पीछे तर्क यह दिया गया कि अधिकाधिक जमा विदेशी पूँजी की राशि को आर्थिक–विकास के क्षेत्रों में लगाना आवश्यक है ताकि आर्थिक–दृष्टि से विपन्न देशों की माली हालत में सुधार किया जा सके। इस बहाने के साथ अमीर देशों ने गरीब देशों पर अपना जाल फैलाना शुरू कर दिया। जाल लम्बा–चौड़ा शक्तिशाली था। इसलिए सम्पन्न देशों ने लाभ भी खूब कमाया। इस जालवाद का दूसरा नतीजा यह हुआ कि सम्पन्न देशों ने गरीब देशों के बाजार पर अपना वर्चस्व आसानी से स्थापित कर लिया। विदेशी जाल से दूसरी दुनिया के बाजार पटने लगे और व्यापारी वर्ग खुश नजर आया। विश्व के वित्तीय बाजारवाद में धीरे–धीरे गति आने लगी और अमेरिका का वित्त–भण्डार एक नए कुबेरवाद की ओर बढ़ता दिखाई दिया। पूँजीवादी साम्राज्यवाद का यह शतरंजी खेल अद्‌भुत अपूर्व था।''[30]

बाजारवाद की नीति मुनाफे की नीति है। 'खरीदो और बेचो' के उद्देश्य से बाजार चलता है। वह प्रत्येक व्यक्ति में उपभोक्ता खोजता है तथा इस कार्य को वह विज्ञापन के माध्यम से करता है। विज्ञापन किसी 'प्रोडक्ट' को इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि व्यक्ति उसके प्रति आकर्षित हो जाता है उदाहरणार्थ ''बाजार में ठंडा मतलब कोकाकोला है। हम तुरंत मान लेंगे, अगर कोई कहे 'गरम मतलब नेस्केफे'। बाजार में कोलगेट दांत दूध जैसे सफेद बना देने का दावा ठोंकता है। महीने भर में सौ ट्‌यूब खत्म करने पर भी अगर ऐसा न हो, आप उसे जवाबदेह नहीं ठहरा सकते। अगर शैम्पू से केश वैसे ही नहीं लहरा पाएं, मकान की एशियन पेंट्‌स सालों तक नया नहीं रह पाए, रूपा के गरम इनर पहनकर भी सर्दी लगे या रिन से वैसी सफेदी न आए, जैसी टीवी में दिखती है, आप किसी को जवाब–तलब नहीं कर सकते। 'धूम्रपान निषेध' की तरह एक अदृश्य तख्ती है– तर्क निषिद्ध है। 'खरीदो या फूटो'। 'हर हफ्ते जीतो कार' आपके मन में कभी संदेह पैदा नहीं करेगा, सिर्फ लालच पैदा करेगा। धोनी बताएंगे कि उनमें इतनी ऊर्जा बूस्ट की वजह से है, भले उन्होंने इसका सेवन कभी नहीं किया हो। सेंसेक्स लुढ़क जाए, आपको सिर्फ चुप रहना है। विश्व बाजार सब्जबाग दिखाता है, सस्ते का ढोंग भरकर अपने जाल में फंसाता है, अपनी चीजों की लत वो देता है, फिर अपने खूंटों से बांधकर दूहता है और खोखला कर देता है। बाजार में छल का एक अद्‌भुत समाजशास्त्र खड़ा है। पहले कलयुग था, यह छलयुग है।''[31]

पूँजीवाद औद्योगिक क्रान्ति से उपजा घटक है। इस क्रान्ति के पश्चात् फैक्ट्रियों के लिए पूँजी की आवश्यकता हुई जिसने पूँजीवाद को विकसित किया। पूँजीवाद इंग्लैण्ड एवं यूरोपीय देशों में वर्चस्व रखता है लेकिन उसका केन्द्र अमेरिका रहा। ''औद्योगिक क्रान्ति ने घरेलू उद्योगों के स्थान पर कारखानों की स्थापना की। कारखानों में प्रत्येक कार्य छोटे–छोटे अंशों में विभक्त था और प्रत्येक श्रमिक छोटा–सा अंश करता था। उत्पादन की वृद्धि हुई। कुछ समय बाद विशालकाय मशीनों को लगाया गया। निगमों की स्थापना हुई जिनके हाथ में विशाल उद्योगों का स्वामित्व था। बड़े पैमाने पर उत्पादन, श्रमविभाजन, विशेषीकरण एवं विनिमय ने पूँजीवाद को जन्म दिया। उत्पादन एवं विनिमय की इस नवीन प्रणाली में उत्पादक वस्तुओं का स्वामित्व व्यक्तिगत एवं सामाजिक दायित्वों, दोनों से रहित था। सम्पत्ति निजी बन गई तथा इसे राज्य, चर्च, परिवार एवं अन्य संस्थाओं के प्रति सभी दायित्वों से मुक्त कर दिया गया। कारखाने के मालिक अपनी इच्छानुसार कुछ भी करने को स्वतन्त्र थे। उनके लिए लाभ ही मुख्य उद्देश्य था।''[32] पूँजीवाद उत्पादन और विनिमय को व्यापक स्तर तक फैलाया। लाभ कमाने के उद्देश्य से पूँजीवाद कम से कम वेतन पर अधिक से अधिक कमा लेना चाहता है। पूँजीवाद के प्रसार से आर्थिक विकास मजबूती पा सका। उद्योग धन्धों की बढ़ती संख्या ने हजारों लोगों को रोजगार दिया परन्तु इसके बरक्स मानवीय सरोकार का दमन कर दिया गया। बाजारवादी व्यवस्था में शिक्षा, ज्ञान, सूचना, कला, संस्कृति, मनोरंजन, मानवीय मूल्य एवं सामाजिक सरोकर में पूँजी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। ''मार्क्सवादी चिंतन अर्नेस्ट

मैडेल ने लेट कैपिटलिज्म' शीर्षक अपनी पुस्तक में कहा कि हमें पूँजी के नए–नए रूपों की व्याख्या पुनर्व्याख्या करनी होगी क्योंकि पूँजी का अर्थ बदल रहा है। हालत यह हो गई है कि पूँजीवाद 'विश्व बाजार' या विश्व बाजार की स्थिति तक पहुँच गया है। उसी ने नयी तकनीकि क्रान्ति को संभव बनाया है और उसी ने पूरी गति के साथ 'बहुराष्ट्रीय–निगमों की सत्ता' को बाजार के वर्चस्ववाद में स्थापित कर दिया है। 'लेट कैपिटलिज्म' पूँजी का वह 'अति रूप' है जो तकनीकी क्रान्ति का नक्शा बदलता और दिखाता है।''[33]

समाज में वर्गीय विषमता धन के आधार पर ही तय होती हैं। पूँजी ही सामाजिक प्रस्थिति तय करती है। इस स्थिति को उपन्यास में पात्रों के माध्यम से वर्णित किया गया है। पैसा कमाने की होड़ में साम–दाम–दण्ड–भेद की नीति अपनाने से भी वह परहेज नहीं करते– ''उसका धन्धा देश में ही नहीं परदेश में भी ख़ूब पनपा क्योंकि उसने लन्दन के जयन्त रमानी की बदसूरत, हमेशा बीमार रहने वाली अपने से उम्र में चौदह साल बड़ी तलाकशुदः बेटी मोहिनी से शादी कर ली। टी.के. से कहीं–कहीं जियादा अमीर जयंत रमानी और उसकी बिटिया मोहिनी ताज़िन्दगी जयकिशन के एहसानमन्द रहे। ससुर ने उसे बिज़नेस की दुनिया में आगे बढ़ाया....।''[34] धन की अत्यधिक लालसा की प्रवृत्ति के कारण वह ऐसा करता था। इस सम्बन्ध में अजय तिवारी कहते हैं– '''हमजाद' में जयदेव का जीवित रहना और सफलता की नई ऊँचाईयां पाना पतनशील उपभोक्तावादी मनोवृत्ति का परिचायक है और भूमण्डलीकृत बाजारवाद के सर्वथा अनुकूल है।''[35] पूँजी के वर्चस्व एवं महत्ता को प्रतिपादित करते हुए उपन्यासकार एक स्थान पर कहते हैं– ''यही सही है कि इस दौर में पैसे की खातिर खुद अपने को भी नंगा कर डालना एक आम सी बात हो चली है।''[36] बाजारवादी व्यवस्था एवं पूँजी के महत्व को 'क्याप' उपन्यास बखूबी बयान करता है। इस उपन्यास के माध्यम से भौगोलिक दृष्टि से दुर्गम क्षेत्रों में बाजारवाद की पदचापों को सुना गया है। ''प्रकृति को पूजने वाले फस्कियाधारवासियों को हैरीसन ने प्रकृति को दुहना सिखाया। उसने उन्हें कस्तूरी मृग और मुनाल पक्षी को बन्दूक से मारना सिखाया। विलायती सुन्दरियों के इत्र के लिए कस्तूरी का और हैटों के लिए मुनाल के रंगीन परों का उसने यहाँ से निर्यात करवाया। इससे उसे तगड़ी और गाँव वालों को भी थोड़ी–बहुत आमदनी हुई।''[37]

इस प्रकार उसने बाजारवादी संस्कृति को विकसित किया। कृष्णदत्त पालीवाल इस संदर्भ में लिखते हैं–''उसने सपने में जीने वाली पहाड़ी बिरादरी में 'भोग का चाव' पैदा कर दिया। भोग का चाव अर्थात् उपभोक्तावादी संस्कृति की नींव रख दी और नए तरह का 'बाजारवाद' पैदा कर दिया, नारी देह से जुड़ा बाजार और बिकने की राजनीति और राजनीति के पीछे धन का लालच।''[38] 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' में भी इस प्रकार की स्थिति को दर्शाया गया है– ''जिस हरमौर का अपना सिक्का तक न था, जिसकी निर्धनता और धार्मिक आग्रह दोनों ने उपवास को आम बना रखा था, जिसके निवासी भूखे पेट भी लगभग हर सप्ताह किसी देवता का पर्व–त्यौहार नाचते–गाते हुए मनाते आये थे, उसमें गिरवाण और उसके विलायती साथी लोभ को एकमात्र गुण, लाभ को एकमात्र मूल्य, भोग को एकमात्र उद्देश्य और वाणिज्य व्यापार को एक मात्र धर्म के रूप में प्रतिष्ठित कर दिखाते हैं।''[39]

इस रूप में वहाँ बाजारवाद विकसित होने लगा है। भारत में सामाजिक सांस्कृतिक स्तर पर तेजी से परिवर्तन आया है उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार होने से मानवीय मूल्य अपना महत्व खोने लगे। 'कसप' के पात्र डी.डी. का कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय अमेरिका के प्रति आकर्षण एवं आवश्यकता उसके प्रेम को असफल बना देते हैं। वह बेबी से शादी के स्थान पर अमेरिका जाने को प्राथमिकता देता है क्योंकि अमेरिका उसके आकर्षण का केन्द्र है, साथ ही पूँजीवाद का भी। 'कुरु–कुरु स्वाहा...' में खलीक के माध्यम से बाजारवाद एवं पूँजीवाद के मोह में डूबे लोगों की मानसिकता को पकड़ने की कोशिश की गयी है ''खलील का कहना था यह सही है कि हार्ट क्रेन की तरह मैं भी कोलम्बस बनकर कहता आया हूँ कि सलामत रहे मेरा बादबान मैं नीली ऊँची घास के इस मैदान गोया समुद्र के उस पार अपनी नयी दुनिया तलाश लूँगा लेकिन मैं यह सोचने को मजबूर हो चला हूँ कि बसेगा तो साला वहाँ भी अमेरिका ही! ...अगर

घटियापन से कोई बचत नहीं तो मैं महज पैसे के लिए यहाँ बम्बई में घटिया क्यों बनूँ? हॉलीवुड क्यों न जाऊँ जहाँ घटियापन के रेट ऊँचे हैं?''[40] ''मुनाफे की नीति इन पात्रों पर हावी रहती है। बाजारवादी व्यवस्था में सभी के रेट तय है इसलिए 'खरीदने' और 'बेचने' की अंतर्क्रिया में आसानी से सम्भव हो रही है। उपन्यास का नायक मनोहर इस व्यवस्था से तिलमिला उठता है– ''धुंधभरी खिड़की से बार–बार जीवन की गली सड़क पर झाँकता हुआ– 'अंधेरे में' कविता के काव्य नायक की तरह। अपने को उधेड़ता हुआ प्रश्न पूछता है कि इस नव पूँजीवादी, नव साम्राज्यवादी संस्कृति में मानव के साथ ऐसी नीच ट्रेजेडी क्यों?'' बाजारवाद को प्रभाव के संदर्भ में शम्भुनाथ कहते हैं कि 'बाजार' नशा पैदा करता है।''[41]

इस कथन की सार्थकता इस रूप में है कि आज हम बाजारवाद के आदी हो गए हैं, बाजारी प्रोडक्ट की लत हमें लग चुकी है। मनोहर श्याम जोशी उत्तर आधुनिक समाज के आर्थिक परिदृश्य के पक्षों को बारीकी से प्रस्तुत करते हैं। बाजारवाद, पूँजीवाद एवं उपभोक्तावादी संस्कृति से उपजा वर्ग भेद तथा सम्बन्धों में असमानता की स्थिति को वह परत दर परत उकेरते हैं। अर्थ प्रधान समाज के आर्थिक सामाजिक पक्षों के सकारात्मक एवं नकारात्मक रूप उनके उपन्यासों में मिलते हैं।

6.0 संदर्भ सूची :

1. इसेन्ट पॉलिटिकल थॉट ऑफ पी॰डब्लू॰, लाहौर, पृ॰ 52–53
2. शम्भुनाथ : भारतीय अस्मिता और हिन्दी, पृ॰ 142
3. डॉ॰ रवीन्द्र नाथ मुकर्जी : सामाजिक विचारधारा कॉम्ट से मुकर्जी तक, पृ॰ 192–193
4. डॉ॰ रवीन्द्र नाथ मुकर्जी : सामाजिक विचारधारा कॉम्ट से मुकर्जी तक, पृ॰ 194
5. मनोहर श्याम जोशी : 21वीं सदी, पृ॰ 169–170
6. मनोहर श्याम जोशी : 21वीं सदी, पृ॰ 130
7. मनोहर श्याम जोशी : हमजाद, पृ॰ 33–34
8. मनोहर श्याम जोशी : क्याप, पृ॰ 43
9. मनोहर श्याम जोशी : कसप, पृ॰ 58–59
10. मनोहर श्याम जोशी : कसप, पृ॰ 84
11. मनोहर श्याम जोशी : कसप, पृ॰ 113
12. मनोहर श्याम जोशी : कसप, पृ॰ 73
13. सुरेश तेन्दुलकर कमेटी के अनुसार, Press note of poverty Estimates 2009-10, Govt. of India Planning Commission, March 2012
14. मनोहर श्याम जोशी : भीड़ में खोया हुआ समाज, पृ॰ 146
15. सुधीश पचौरी : समकालीन साहित्य रंजन, पृ॰ 79
16. मनोहर श्याम जोशी : क्याप, पृ॰ 17
17. मनोहर श्याम जोशी : क्याप, पृ॰ 45–46
18. मनोहर श्याम जोशी : हमजाद, पृ॰ 45–46
19. मनोहर श्याम जोशी : कसप, पृ॰ 42
20. मनोहर श्याम जोशी : कसप, पृ॰ 133
21. मनोहर श्याम जोशी : हमजाद, पृ॰ 121
22. मनोहर श्याम जोशी : हमजाद, पृ॰ 46
23. सुधीश पचौरी : उत्तर आधुनिक साहित्यिक विमर्श, पृ॰ 33
24. मनोहर श्याम जोशी : कसप, पृ॰ 67
25. मनोहर श्याम जोशी : कसप, पृ॰ 62
26. मनोहर श्याम जोशी : कसप, पृ॰ 275–276
27. मनोहर श्याम जोशी : कुरु कुरु स्वाहा..., पृ॰ 25

28. मनोहर श्याम जोशी : कौन हूँ मैं, पृ॰ 96
29. कृष्णदत्त पालीवाल : उत्तर आधुनिकतावाद और दलित साहित्य, पृ॰ 90
30. कृष्णदत्त पालीवाल : उत्तर आधुनिकतावाद और दलित साहित्य, पृ॰ 131–132
31. शम्भुनाथ : भारतीय अस्मिता और हिन्दी, पृ॰ 167
32. विद्याभूषण, डी॰आर॰ सचदेव : समाजशास्त्र के सिद्धान्त, पृ॰ 463
33. कृष्णदत्त पालीवाल : उत्तर आधुनिकतावाद और दलित साहित्य, पृ॰ 83
34. मनोहर श्याम जोशी : हमजाद, पृ॰ 110
35. कुसुमलता मलिक : गल्प का गुलमोहर–मनोहर श्याम जोशी, पृ॰ 84
36. मनोहर श्याम जोशी : हमजाद, पृ॰ 9
37. मनोहर श्याम जोशी : क्याप, पृ॰ 27
38. कृष्णदत्त पालीवाल : सृजन का अंतर्पाठ, उत्तर आधुनिक विमर्श, पृ॰ 379
39. मनोहर श्याम जोशी : हरिया हरक्यूलीज की हैरानी, पृ॰ 70
40. मनोजर श्याम जोशी : कुरू कुरू स्वाहा..., पृ॰ 157
41. कुसुम लता मलिक : गल्प का गुलमोहर–मनोहर श्याम जोशी, पृ॰ 44